शताब्दी का संघर्ष

(1857 ई. से 1958 ई. तक)

प्रधान सम्पादक

डॉ. नीलम कौशिक

सह-सम्पादक

डॉ. हेमेन्द्र चौधरी

शताब्दी का संघर्ष

(1857 ई. से 1958 ई. तक)

प्रधान सम्पादक

डॉ. नीलम कौशिक

सह-सम्पादक

डॉ. हेमेन्द्र चौधरी

हिमांशु पब्लिकेशन्स

उदयपुर ☐ नई दिल्ली

मुद्रणाधिकार © सम्पादकगण

इस पुस्तक के किसी भी अंश की किसी भी रूप में प्रतिकृति करना या किसी भी साधन-इलेक्ट्रॉनिक, मैकेनिकल या अन्य प्रकार, फोटोकॉपी, रिकॉर्डिंग या सूचना संचयन और पुनः प्राप्ति पद्धति - द्वारा प्रसारित करना सम्पादकगण/प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना मना है।

The authors of the papers are alone responsible for technical contents of the papers and references therein.

हिमांशु पब्लिकेशन्स

464, हिरण मगरी, सेक्टर 11, उदयपुर 313 002 (राज.), फोन: 0294-5106186, 5106183
4379/4-B, प्रकाश हाऊस, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली-2, मोबाईल: 94141-66102
Web : *himanshupublications.com*; email : *himanshupublications@gmail.com*

ISBN : 978-81-7906-663-8

संस्करण : 2017

मूल्य : ₹ 895.00

वितरक

आर्य बुक सेंटर

हॉस्पिटल रोड, उदयपुर - 313 001 (राजस्थान) ☎: 0294-2421087

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	लेखक	शीर्षक	पृष्ठ
	सम्पादकीय		
	मुख्य वक्ता का उद्‌बोधन	प्रो. पेमाराम	1
1.	प्रो. के.एस. गुप्ता	1857 की क्रान्ति एवं इतिहास लेखन (राजस्थान के सन्दर्भ में)	13
2.	डॉ. आमोश मीणा	भारतीय परिषद् अधिनियम 1861 ई.	20
3.	डॉ. आशिष नन्दवाना	मेवाड़ के स्वतन्त्रता आन्दोलन के सेनानी – जनार्दनराय नागर	27
4.	डॉ. दिनेश मांडोत	भारत में राष्ट्रवाद के अग्रदूत स्वामी दयानन्द का राजनीतिक चिंतन और उसके परिणाम	32
5.	गिरीश कुमार पुरोहित	होमरूल लीग : भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में योगदान	45
6.	गोविन्द सिंह सोलंकी	1857 की क्रान्ति और रूपनगर ठिकाना (मेवाड़)	56
7.	डॉ. जगदीश नारायण ओझा	महाराजा गंगासिंह का काल और छात्र आन्दोलन	61
8.	डॉ. कैलाश चन्द्र जोशी	अज्ञात स्वतन्त्रता सैनानी – श्री जगन्नाथ पण्ड्या	69
9.	डॉ. ममता पूर्बिया	भारत के स्वाधीनता संग्राम में आर्य समाज का योगदान	73
10.	मोहम्मद फारूक चौहान डॉ. शारदा शर्मा	1857 ई. की क्रांति व बीकानेर के महाराजा सरदारसिंह की भूमिका व योगदान	80
11.	प्रो. प्रतिभा	भारत की स्वर्णिम वस्त्र परम्परा के विनाश का औपनिवेशिक हल और गांधी का खादी सत्याग्रह	94
12.	श्रीमती रैखा चौधरी	मेवाड़ प्रजामण्डल और पुलिस की भूमिका	109
13.	श्रीमती रेखा महात्मा	दक्षिणी राजस्थान मे राष्ट्रीय जन चेतना में सामाजिक संस्थाओं की भूमिका	115
14.	डॉ. समीर व्यास	वागड के स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी "माणिक्यलाल विद्यार्थी"	121

भारत की स्वर्णिम वस्त्र परम्परा के विनाश का औपनिवेशिक हल और गांधी का खादी सत्याग्रह

प्रो. प्रतिभा

परिचय

झीनी–झीनी बीनी चदरिया
काहे के ताना काहे के भरनी
कौन तार से बीनी चदरिया

वस्त्र के ताने–बाने के रूपक से शरीर के मर्म और धर्म को अभिव्यक्त करती कबीर की ये पंक्तियां भारतीय सभ्यता में वस्त्र और वस्त्र निर्माण प्रक्रिया के महत्व को रूपायित करती हैं। बर्बरता से सभ्यता की मानव यात्रा के महत्वपूर्ण पड़ाव के रूप में चिह्नित सूती, ऊनी और रेशमी वस्त्रों के स्पष्ट संकेत विश्व की प्राचीन सभ्यताओं के प्रारम्भिक इतिहास में प्राप्त होते हैं। भारत की सिन्धु घाटी की सभ्यता में उच्चकोटिक सूत्री वस्त्रों के साक्ष्य तो प्राप्त होते ही हैं, साथ ही समकालीन मिस्र की नील नदी की सभ्यता में कब्रों में प्राप्त भारतीय छींट उनके व्यापार को भी सिद्ध करती है। ऋग्वेद में पुत्र के लिए माता द्वारा वस्त्र तैयार करने का उल्लेख है –

वितन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयंति[1]

आगे चलकर रामायण, महाभारत के विविध प्रसंगों तथा कौटिल्य के सूक्ष्म विवरणों से वस्त्र विज्ञान की प्रगति और पुष्ट होती है। मैगस्थनीज आदि ग्रीक तथा फाह्यान और हवेनसांग आदि चीनी यात्रियों के भारतीय चमक–दमक सम्बनधी विवरणों में भारतीय वस्त्र उद्योग और उसके निर्यात से प्राप्त समृद्धि का महत्वपूर्ण योगदान है। प्राचीन भारतीय मलमल के विषय में कहा जाता था कि वह इतना महीन होता था, कि उसमें से तेल भी नहीं फैल पाता था। मृत्यु के पश्चात् बुद्ध का शरीर ऐसे ही मलमल वस्त्र से ढका गया था।

भारतीय श्वेत और रंगीन वस्त्रों की पहुंच विश्व के कोने–कोने में थी। ईसा से कई सौ वर्ष यूरोप, अफ्रीका और भूमध्यसागर के देशों में वे लगातार

---

* प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

पहुंच रहे थे। यहाँ तक कि विनिमय के विश्वसनीय माध्यम और दास–दासियों के क्रय–विक्रय तथा अर्थदंड के भुगतान के रूप में भी इनका प्रयोग हो रहा था। रोम–वासियों को दुख था कि हमारे यहाँ इतने सुन्दर वस्त्र पर्याप्त मात्रा में नहीं है।

ईसा की पहली सदी में जब चर्च की स्थापना हुई तो उसकी सभी शाखाओं–प्रशाखाओं से जुड़े पादरी भारतीय श्वेत सूती वस्त्र ही पहनते थे। रंगीन वस्त्रों का पक्का रंग तो मुहावरों के रूप में प्रयोग होता था। चौथी सदी में जब सेंट जेरोम ने बाइबिल का अनुवाद किया तो उससे उपजे विवेक के स्थायी प्रभाव की तुलना उन्होंने भारतीय कपड़ों के कभी भी न उड़ने वाले रंग से की।[2]

भारत के संत कवि पल्टू भी शाश्वत प्रेम की तुलना 'मजीठ' के रंग[3] से करते हैं–

पल्टू ऐसी प्रीति कर
ज्यों मजीठ को रंग
तार–तार कपड़ा उड़े
तबहुं न छाड़े रंग।

भारत के रंगीन वस्त्रों की व्याप्ति यहाँ तक हो गई कि सीलसिथ के एंग्लो–सेक्शन नस्ल के चर्च से जुड़े ईसाई धर्म की एक शाखा के धर्मगुरुओं की सभा में यह खास हिदायत दी गई कि पादरी समाज को भारतीय रंगों से रंग कपड़ों के प्रयोग से बचना चाहिए।[4]

भारत पर इस्लामी आक्रमणों और शासन स्थापना के पश्चात् भी वस्त्र उद्योग का पारम्परिक ढाँचा यथावत रहा। खुसरो ने चरखे से जुड़ी प्रसिद्ध पहेली द्वारा आम जन के साथ इसके खास सरोकारों को स्वर दिया–

एक पुरुष बहुत गुनचरा,
लेटा जागे सोये खड़ा।
उल्टा होकर डाले बेल,
यह देखो करतार का खेल।

तो तुलसी ने कपास को सज्जनों का प्रतीक बनाया–

साधु चरित सुभ चरित कपासू,
निरस बिसद गुनमय फल जासू
जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा
बंदनीय जहि जग जस गावा।

मुगलों के कुशल प्रबन्धन और व्यवस्थित प्रशासन से 16 वीं से 18 वीं सदी तक वस्त्र उद्योग ने शानदार प्रगति की। बंगाल के बुनकरों द्वारा बनाए पारदर्शी वस्त्र शबनम की खासियत थी कि यह इतनी पारदर्शी था कि कई पर्तो के आवरण के बाद भी मुगल रानियां बेपर्दा प्रतीत होती थीं। अंगूठी से गुजरकर माचिस की डिबिया में समा जाने वाले ढाका के मलमली थान की ख्याति तो अप्रतिम ही थी। कुल वस्त्र उत्पादन का बड़ा हिस्सा इंग्लैंड सहित पश्चिमी देशों को निर्यात होता था। अंग्रेज इतिहासकार लैकी के अनुसार 1688 ई. की अंग्रेजी राज्यक्रांति के पश्चात् जब क्वीन मैरी अपने पति के साथ इंग्लैण्ड आईं तो भारतवर्ष के रंगीन कपड़ों का शौक उसके साथ आया और तेजी से फैलता गया।[5]

आगे चलकर मैकाले ने भी स्वीकार किया कि लंदन और पेरिस की स्त्रियां बंगाल के करघों पर तैयार होने वाले कोमल वस्त्रों से विभूषित थीं।[6] इन सस्ती, सुन्दर वस्त्रों की लोकप्रियता से 17 वीं सदी का अन्त होते होते इंग्लैण्ड़ में ऊन और रेशम का व्यवसाय बैठ गया। लैकी के शब्दों में "At the end of 17th century great quantities of cheap and graceful Indian colicoes, muslins and chintzes were imported to england and they found such favour that the woolen and silk manufacture were seriously alarmed".[7]

इस कारण 1700 और 1721 में इंग्लैण्ड की पार्लियामेन्ट ने कानून पास कर हिन्दुस्तान के छपे हुए और रंगीन माल पर जबरदस्त चुंगी लगवाई और इस प्रकार उसे पर्याप्त हानि पहुंचाई। लेकिन जैसे यही काफी न हो, भारतीय वस्त्र उद्योग के अधिक विकट शत्रु आने अभी शेष थे। लगभग आधी सदी बात एक के बाद एक फ्लाइंग शटल, स्पिनिंग जेनी, भाप का इंजन, पावरलूम आदि यंत्र मनुष्य के जीवन को और निरीह तथा लाचार बनाते हुए उसके जीवन में प्रविष्ट हुए। 18 वीं सदी के अन्त तक धीरे धीरे स्वयं इंग्लैण्ड में पावरलूम ने हथकरघों का स्थान ले लिया और बढ़े हुए वस्त्र उत्पादन की चपेट में न केवल सदियों से हथकरघा उद्योग में लगे इंग्लैण्ड के श्रमिक बल्कि इसके निर्यात से प्रभावित फ्रांस, जर्मनी, आदि सभी यूरोपीय देशों के श्रमिक बेरोजगारी और भुखमरी के शिकार हो गए। यहाँ तक कि सीरिया, आर्मी फारस तथा चीन में भी पारम्परिक कपड़ा उत्पादन ठप्प हो गया।

भारत तो इंग्लैण्ड़ का उपनिवेश था, अतः उसे सबसे अधिक मूल्य चुकाना ही था। इंगलिश कपड़ा उद्योग के सुरसा–मुख के लिए कच्चे माल की आपूर्ति के साथ–साथ तैयार माल की खपत के लिए भी उसे प्रस्तुत रहना था, इससे उसके समय में इंगलिश माल से भारतीय बाजार पट गए। 1814 में यदि इंगलैंड से 16, 15, 315 रूपये का सूती वस्त्र आता था, तो 1828 में बढ़कर 3,01,46,615 रुपये का आने लगा। मात्र 14 वर्ष में इंग्लैंड से भारत आने वाले सूती माल की कीमत लगभग 19 गुना बढ़ गई। दूसरी ओर इंगलैंड की

औपनिवेशिक कुनीतियों के चलते भारत से बाहर जाने वाले सूती वस्त्र में बेहिसाब कमी आई। चार्ल्स हेवेलियन ने आंकड़े दिए कि 1833 तक एक करोड़ रूपए साल का विलायत का बाजार और 80 लाख रुपए का स्वयं बंगाल का बाजार बंगाल के कपड़ा बुनने वालों के हाथों से छीना जा चुका था। वे कहते है कि 18000000 रुपये सालाना की इस विशाल रकम को पैदा करने में जितने लोग लगे हुए थे, उनकी अब क्या हालत होगी?

कार्ल मार्क्स ने 1834–35 की गवर्नर जनरल के रिपोर्ट के हवाले से लिखा– "इस तरह की गरीबी व्यापार के इतिहास में पहले कभी देखी नहीं गई। हिन्दुस्तान के मैदानों में जुलाहों की हड्डिया बिखरी पड़ी हैं।"[10]

1911 की जनगणना रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि बहुत बाद भी, उस समय तक भी यह प्रक्रिया जारी रही। उस समय तक हिन्दुस्तान के सूती कपड़ों के धंधे धीरे–धीरे खत्म हो गए थे, फिर भी 1911 की रिपोर्ट में बताया गया था कि पिछले 10 वर्षों में सूती मजदूरों की तादाद 6 फीसदी और कम हो गयी थी। इसका सबब यह बताया गया कि हाथ की कताई करीब–करीब खत्म हो गयी है।[11]

साधारणता से असाधारणता के यात्री गांधी इस कटु सत्य से वाकिफ थे कि इग्लैंड़ की कपड़ा मिलें भारत जैसे उपनिवेशों के बुनकरों की तबाही और बरबादी की नींव पर खड़ी हैं। संभवतः इसीलिए उन्होंने सूत के इसी धागे को अपने सत्याग्रह का प्रतीक बनाया। गरीबी के साथ–साथ औपनिवेशिक दासता से मुक्ति के अस्त्र के रूप में चरखे की कल्पना गांधीजी ने 1908 से पूर्व ही कर ली थी, जबकि 1915 से पूर्व उन्होंने चरखे अथवा करघे को देखा तक नहीं था। अपनी आत्मकथा में गांधीजी कहते हैं–

"सन् 1908 तक मैनें चरखा या करघा देखा हो, इसकी याद मुझे नहीं। फिर भी चरखा या करघा देखा हो, इसकी याद मुझे नहीं। फिर भी हिंद स्वराज में, चरखे के जरिए हिन्दुस्तान की कंगाली मिट सकती है, यह बात मैनें मानी है और जिस उपाय से भुखमरी भाग सकती हो, उस उपास से स्वराज्य भी मिलेगा, यह तो सभी समझ सकते हैं।[12]

1915 में जब गांधीजी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे तो नित नए मशीनों के आविष्कार से हिन्दुस्तान का आर्थिक शोषण बद से बदतर हो गया था। वे यह जानते थे कि मशीनें समृद्धि और चमक–दमक मात्र कुछ के लिए ही लाती हैं। शेष के लिए तो अंधकार ही बचता है। उन्हें ज्ञात था कि रोटी के बाद वस्त्र ही इंसान की मूलभूत जरुरत हैं और इनकी आपूर्ति इंगलैंड से हो रही थी। वह भी हमारे ही कच्चे माल से निर्मित वस्त्रों की कमरतोड़ कीमत वसूलते हुए अतः स्वदेशी अभियान के रूप में एक संकल्प उनके सामने था। यद्यपि 1902 के बंग–बंग विरोधी आन्दोलन में भी यह शामिल था परन्तु किसी

सुनियोजित रणनीति के अभाव में वह मात्र एक भावात्मक नारा और आन्दोलन बन कर रह गया था।

अतः गांधी जी ने पूरी तैयारी और योजना के साथ इस दिशा में काम करने का संकल्प लिया। दादा भाई नौरोजी (1825–1917) तथा रमेशचन्द्र दत्त (1848–1909) जैसे संवेदनशील भारतीयों की पुस्तकों (क्रमशः 'पावर्टी एंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया' तथा 'इकॉनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया') से उनको सम्पूर्ण परिस्थिति को समझने में पर्याप्त मदद मिली। हिंद स्वराज के मशीनों से जुड़े अध्याय में गांधी जी बताते हैं कि कैसे रमेश चन्द्र दत्त की पुस्तक पढ़ते हुए उनका दिल भर आया था।[13]

स्वयं गांधी जी ने अपने स्वभाव के अनुसार भी परिस्थितियों का गहन सूक्ष्म अवलोकन किया। उन्होंने पाया कि विदेशी कपड़ों का अबाध आगमन आर्थिक विपन्नता के साथ–साथ जनता के एक बड़े वर्ग के लिए सामाजिक और नैतिक पतन का भी कारण बना। आगे चलकर गांधीजी बताते हैं कि गुजरात के काठियावाड़ के अछूत माने जाने बुनकर बेरोजगार होकर घर परिवार सहित दर–दर की ठोकरें खाने के लिए मजबूर हो गए। उनमें से अनेक बंबई आकर मजदूरी के साथ–साथ भंगी तक का काम करने लगे और उनकी स्त्रियां–बेटियां अपनी अस्मिता तक बेचने लगी। इसी प्रकार पंजाब के बनुकर अंग्रेजी सेना के भाड़े के सैनिक बन गए और अनिच्छा के बावजूद अंग्रेज अफसरों के निर्देश पर निर्दोष अरबों की हत्या–पेशेवर हत्यारों की तरह करने लगे।[14]

भारत लौटने के बाद पूरा एक साल गांधीजी ने अपने गुरु गोखले को दिए वचन के अनुसार कुछ भी न बोलकर देश की दशा–दिशा को गहराई से समझने में लगाया। जनवरी 1916 में उनके न बोलने के वचन की अवधि पूरी हुई और यह संयोग ही था कि फरवरी 16 में दिए उनके प्रारम्भिक तीन भाषण स्वदेशी पर ही केन्द्रित थे। इनमें भी गुरुकुल कांगड़ी में दिए भाषण के अलावा शेष दोनों भाषण इसाई मिशनरियों के मद्रास अधिवेशन और वाइ.एम.सी.ए. मद्रास में दिए गए। विशेष रूप से ईसाई मिशनरियों उनकी औपनिवेशिक मिली भगत और खुले बल को देखते हुए काफी महत्वपूर्ण था। आगे भी गांधीजी ने काफी बेबाकी से इस विषय पर अपने विचार व्यक्त किए। बहुत बाद में पोप जॉन पॉल द्वितीय ने भी अपनी पुस्तक Crossing the Threshold of Hope में ईमानदारी से इसे स्वीकारा है।[15]

व्यक्तिगत स्तर पर 1916 में साबरमती आश्रम की स्थापना और आश्रम जीवन की शुरुआत के बाद स्वदेशी के दृष्टिकोण से चरखे और खादी को पुनर्जीवित करने के प्रयास गांधी जी ने प्रारंभ कर दिए थे। 1920 तक खादी का काम आश्रम तक ही सीमित था। लेकिन उसके बाद इसे जीवन की सुरक्षा,

श्रम की प्रतिष्ठा और शिक्षण का माध्यम असहयोग आन्दोलन के रचनात्मक पहलू द्वारा इन्होंने जन–जन की आध्यात्मिक जीवन चर्या और दैनन्दिनी यज्ञ में परिवर्तित कर दिया।

खादी आन्दोलन के निहितार्थ

अपने स्वभाव के अनुसार गांधीजी किसी भी आन्दोलन को खड़ा करने के पूर्व उसकी प्रकृति, कारण और परिणाम के विषय में गहन विचार विमर्श करते थे। सुदूर अतीत के साथ सुदूर भविष्य में भी देख सकने की अपनी क्षमता के साथ गांधी जी ने व्यापक निहितार्थो के साथ आन्दोलन को व्यापक रूप प्रदान किया।

चरखे के उपयोग हेतु निम्न प्रभावी कारण प्रत्यक्ष थे –

1. यह अत्यन्त व्यावहारिक था और तुरनत अपनाया जा सकता था। कम पूंजी और कम खर्च के साथ सुगमता से शुरु किया जा सकता था। लकड़ी सर्वत्र सुलभ होने के कारण कच्चा माल और अन्य पुर्जे सस्ते और आसानी से प्राप्त थे।
2. इस कार्य में कम शारीरिक शक्ति की आवश्यकता थी। अतः बच्चे, बूढ़े, स्त्रियां सभी इस कार्य को आसानी से कर सकते थे।
3. इस कार्य हेतु ज्यादा कौशल की भी आवश्यकता नहीं थी। भारत की निर्धन तथा अशिक्षित जनता के पास जितना कौशल और बुद्धि है, उतना इसके लिए पर्याप्त है।
4. चरखे पर कभी भी कार्य किया जा सकता है। किसी भी समय, किसी भी मौसम अर्थात् अपनी सुविधानुसार साल भर, कृषि से अवकाश के समय अथवा अकाल आदि के समय।
5. चूंकि वस्त्र की आवश्यकता विश्वव्यापी है अतः आय के स्थायी साधन के रूप से इसे विकसित किया जा सकता है।
6. यह कार्य शारीरिक श्रम की महत्ता को तो प्रतिष्ठापित करता ही है, श्रम के साथ बुद्धि के गठबंधन को भी महत्व देने पर ईश्वर द्वारा प्रदत्त शारीरिक और बौद्धिम क्षमताओं को प्रयोग कर मनुष्य का कर्तव्य बनाकर।
7. इससे समय का सदुपयोग होता है। प्रतिदिन बेकार जाने वाले अरबों घंटे रचनात्मक कार्य में लगाए जा सकते हैं।
8. इससे बेकारी और निर्धनता से लड़ना आसान हो जाता है। भारत के 80 प्रतिशत लोग अपने ही खेतों में कम से कम 4

माह खाली रहते थे, अकाल के समय इस बेरोजगारी में और बढ़ोतरी हो जाती थी, उससे निपटना संभव हो सकेगा।

9. मानव संसाधन का भरपूर दोहन संभव हो सकेगा, साथ ही वैश्विक सम्पत्ति का न्यायपूर्ण बंटवारा संभव हो पाएगा।

10. इससे भारतीय परम्परा का निर्वाह भी होगा, क्योंकि कपास का उत्पादन, सूत का कातना और बुनना तीनों विश्व सभ्यता को भारत की देन है।

कुल मिलाकर चरखे के माध्यम से पर्याप्त अन्न और वस्त्र घर में ही रहते हुए, स्वाभिमान के साथ अर्जित किया जा सकता था और महत्वपूर्ण बात यह भी थी कि चरखे के पुनर्जीवन के साथ अन्य उद्योगों को भी पुनर्जीवन प्राप्त हो जाता।

इन प्रत्यक्ष, व्यावहारिक तथा अर्थार्जन सम्बन्धी प्रयोजनों के साथ–साथ स्वावलम्बन, विकेन्द्रीकरण और स्वराज्य के अधिक महत्वपूर्ण प्रयोजन भी इस आन्दोलन के माध्यम से पूरे किए जाने थे। विशेष रूप से स्वावलम्बन क्योंकि यदि मनुष्य अन्न और वस्त्र में स्वावलम्बी हो जाता है तो वह स्वतंत्र हो जाता है। स्वावलंबन की यह प्रक्रिया प्रत्येक व्यक्ति के स्वावलंबन, परिवार के स्वावलंबन, गांव के स्वावलंबन से चलकर राष्ट्र के स्वावलम्बन में बदलता है।[16]

विशेषकर गांवों को गांधीजी पूर्ण स्वावलम्बी बनाना चाहते थे। इस माध्यम से दस्तकारी के विनाश के बाद निस्तेज और निष्प्राण हो चुके ग्रामों और ग्रामवासियों में प्राण फूँकना बहुत आवश्यक था वे कहते हैं :–

यदि हम चाहते हैं कि गाँवों का पुनरुज्जीवन हो तो सबसे सहज बात यह सामने आती है कि हमें चरखे और उससे जुड़ी तमाम चीजों का पुनरुद्धार करना चाहितए।[17]

आन्दोलन के प्रतीकात्मक पक्षों का भी अपना महत्व था। यथा चरखे के माध्यम से शोषण के स्थान पर सेवाभाव को प्रतिष्ठित किया जाना था। गांधी जी ने कहा – "चरखे का संदेश वस्तुतः शोषण की भावना के स्थान पर सेवा की भावना को प्रतिष्ठित करने का है। पश्चिम का प्रमुख स्वर शोषण का स्वर है। मेरी कतई इच्छा नहीं है कि हमारा देश उस भावना अथवा स्वर की नकल करे।"[19]

इसी तरह यह भी अकारण नहीं है कि गांधीजी ने चरखे को स्वाधीनता का प्रतीक बनाया क्योंकि इसके माध्यम से वस्त्र उत्पादन और उसकी पूरी प्रक्रिया असीम धैर्य और मनोयोग की अपेक्षा करती है। इसमें कपास बोना, चुनना, उसे साफ करना, ओटना, रूई पींजना, पूनी बनाना, सूत कातना, मांड

रंगना, ताना भरना, कपड़ा बुनना, आदि शामिल है। ठीक उसी तरह स्वाधीनता की साधना ऐशो आराम और सुखोपभोग की साधना न होकर किसी योगी की एकाग्र और सतत साधना है।[20]

और सबसे बढ़कर चरखे और खादी का यह आन्दोलन गांधी के अहिंसा के सिद्धान्त से गुम्फित था। उन्होनें चरखे को अहिंसा का प्रत्यक्ष दर्शन कराने वाला प्रतीक माना। अमूर्त अहिंसा को चरखे का साकार रूप देते हुए उन्होनें कहा।

साकारवादी सगुण भक्ति को श्रेष्ठ मानता है। इस भावना के अनुसार यदि अहिंसा की उपासना करती है तो चरखे को उसकी साकार मूर्ति उसका प्रतीक मानकर उसे आंखों के सामने रखना चाहिए। मैं अहिंसा का दर्शन करता हूं तब चरखे का दर्शन पाता हूं।[21]

चरखा और खादी ही नहीं, अन्य घरेलू उद्योग धंधे भी अहिंसा से विशेष रूप से सम्बद्ध हैं और इनकी पुष्टि से अहिंसा की पुष्टि होगी। चरखा दुनिया से व्यापारिक प्रतिस्पर्धा और साम्राज्यवाद को नष्ट कर सकता हैं। जब ये दोनों चीजें नहीं रहेगी, तो युद्ध और एटम बम की भी आवश्यकता नहीं है।

चरखा गांधी जी की भावी सामाजार्थिक योजनाओं का भी आधार था। एक और उन्होंने चरखे और खादी को ऐसे केन्द्र बिन्दु के रूप में देखा, जिसके चारों ओर अन्य आर्थिक गतिविधियां चलायमान हैं–

"खादी ग्रामीण सौरमंडल का सूर्य है, अन्य सभी उद्योग इसके ग्रहों के समान है। ये सभी अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए खादी पर निर्भर हैं। खादी के बिना किसी भी उद्योग का विकास नहीं हो सकता।[23]

दूसरी और उन्होंने चरखे को सामाजिक व्यवस्था के आधार के रूप में भी देखा –

"यदि मैं सारे देश से अपना विचार मनवा सका तो भावी सामाजिक व्यवस्था का मुख्य आधार चरखा होगा और इसमें वह चीज शामिल होगी, जिससे गांव वालों का कल्याण हो।"[24]

स्पष्ट रूप से चरखे का संदेश उसकी परिधि से कहीं ज्यादा व्यापक है। उसका संदेश सादगी, मानव सेवा, अहिंसामय जीवन तथा गरीब और अमीर, पूंजी और श्रम, राजा और किसान के बीच अविच्छेद्य संबंध स्थापित करने का संदेश है।[25]

ऐसा नहीं है कि गाँधी जी खादी के इस कठिन मार्ग से अपरिचित थे। इस मार्ग में अपने अहं और अस्तित्व तक को मिटाने की आवश्यकता थी। गांधी ने कहा–

"जीवन से हाथ धोना..... और स्वयं को मिटा देना, एक ही बात नहीं है। मनुष्य को भगवत्प्राप्ति के लिए त्याग के रूप में स्वेच्छा से अपनी हस्ती अथवा अहंकार को मिटाने का पाठ सीखना पड़ता है। चरखे में कोई अनन्यता नहीं है। वह निर्धनतम व्यक्ति सहित सबका है। इसलिए वह हमसे विनम्र बनने और अपने गर्व को पूरी तरह मिटा देने की अपेक्षा करता है।"[26]

उन्हें यह भी ज्ञात था कि गरीब भारतीयों के लिए विदेशी कपड़ों का बहिष्कार कर स्वदेशी कपड़ों की व्यवस्था कर पाना अत्यन्त मुश्किल होगा। इसके लिए उन्होंने भारतीय पुरुषों को सलाह दी कि वे कम से कम कपड़ों से काम चलाएं। उदाहरण के लिए गर्मी के मौसम में कमर के उपर का हिस्सा ढ़कने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा उन्होनें भारतीय संस्कृति के हवाले से कहा, जिसमें पुरुषों द्वारा कमर के उपर का हिस्सा ढंकने पर जोर नहीं दिया जाता।

उन्होंने स्वयं ऐसा करने की ठानी और उस पर अडिग रहे। 29 सितम्बर 1920 के यंग इंडिया में उन्होनें प्रण किया कि 31 अक्टूबर, 1920 के बाद वे कमर के ऊपर कोई परिधान नहीं पहनेंगे। आवश्यकता होने पर चादर से काम चलाएंगे– राजगोपालाचारी जैसे लोगों ने भी आशंका जतायी कि यह पागलपन की खब्त है, परंतु गांधी अपने प्रण पर खरे उतरे। उन्होंने उपरिवस्त्रों का त्याग किया, धार्मिक अनुष्ठान की तरह रोज स्वयं चरखा काटता और देशवासियों को भी रोज चरखा कातने के लिए प्रेरित किया। यहाँ तक कि विदेशी वस्त्रों की होली जलाने से असहमत गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर को भी चरखा कातने की सलाह दे डाली।

आन्दोलन की प्रगति

देशभर में चरखे और खादी की लहर प्रारंभ हो गयी। अपने जन–संबोधनो में गांधी ने चरखा कातने और खादी पहनने के व्यावहारिक पक्षों पर जोर दिया। दिल्ली की एक प्रार्थना सभा में उन्होंने कहा – "भारत में सालाना 300 करोड़ रूपये के वस्त्रों की खपत है। देशी मिलें 8–8 घण्टों की शिफ्टों में काम करें, तो भी 40 करोड़ का कपड़ा बनेगा। मिल के सूत और करघों से 8 करोड़ रूपये का कपड़ा बन सकता है। ऐसी सूरत में या तो हम 250 करोड़ रुपये बाहर भेजें, जो किसानों की कमाई का पाचवाँ हिस्सा है, या हर भारतीय सूत कातने में योग देकर इस रकम को बचाने का प्रयत्न कर

मौजूदा वस्त्र संकट को टाले।[27] जो काते वो पहने के नारे से भी स्पष्ट है कि खादी के लिए गांधी जी हर व्यक्ति का योगदान चाहते थे।

खादी को लेकर गांधीजी की व्यावहारिकता इस तथ्य से स्पष्ट है कि वे बार–बार कहते थे कि मैं चरखे को रुढ़ि नहीं बनाना चाहता। जनता के मौजूदा आर्थिक संकट को दूर करने का मुझे कोई दूसरा उपाय बता दो तो मैं चरखे को जला दूं।

मशीनीकरण और औपनिवेशिक हितों का यह भारतीय प्रतिरोध आन्दोलन अपने किस्म का पहला आंदोलन नहीं था। स्वयं इंगलैंड में भी मशीनीकरण की प्रतिक्रिया हुई थी, वह भी गांधी के आंदोलन के विपरीत हिंसा से परिपूर्ण। नवम्बर 1811 में नांटिघम शायर में पावरलूम के कारण बेरोजगार के शिकार हजारों बुनकरों ने पावरलूम मिलों के ताले तोड़कर उनमें रखी मशीनों को तोड़–फोड़ डाला। उस समय आमजन में यह विश्वास था कि इस आंदोलन के प्रेरक काल्पनिक मिथकीय चरित्र जनरल लुड थे, जो धनियों का धन लूटकर गरीबों में बांटने वाले मध्यकालीन बागी लुटेरे रॉबिन हुड के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी थे।

शीघ्र ही आंदोलन अन्य शहरों में भी फैल गया। इस आंदोलन के कर्ता–धर्ता लुड के अनुयायी होने के कारण लुडाइट कहे गए। जून 1812 तक कुल 1000 से अधिक पावरलूम नष्ट कर दिए गए। इस आंदोलन को दबाने के लिए 15,000 से भी ज्यादा सशक्त सैनिकों की सेवाएं लेनी पड़ी।

इसी प्रकार स्कॉटलैंड में सैकड़ों वर्षों तक लिनन मुख्य उद्योग रहा। लेकिन आयातित वस्त्र से बुनकरों के हितों पर चोट पहुंचाने पर वहाँ न केवल फ्रांस से कपड़ा मंगाने पर प्रतिबंध लगाया गया, बल्कि पहनने पर भारी जुर्माना भी देना पड़ता था। वहाँ की संसद ने 1686 ई. में एक कानून बनाया कि प्रत्येक व्यक्ति उन कपड़ों में लपेटकर दफनाया जाए तो ऐसी वस्तु से बना हो, जिसे स्कॉटलैंड में ही उगाया गया हो, काता गया हो तथा बुना गया हो।[29]

एक गुलाम देश में जहाँ भारतीयों के हाथ में कोई कानूनी शक्ति नहीं थी, बल्कि औपनिवेशिक ताकतें भारत को अगली कई शताब्दियों तक गुलाम बनाए रखने और आर्थिक शोषण करते रहने का छल कर रही थी, गांधी ने वह कर दिखाया जो कई सरकारें मिल कर भी नहीं कर पातीं। अपने खादी सत्याग्रह से वे न केवल कातिनों, बुनकरों लघु उद्यमियों के चेहरों पर मुस्कराहट लाने में सफल रहे, बल्कि देश को स्वतंत्र कराने का मार्ग भी प्रशस्त किया।

जनता को सूत कातने और कपड़ा बुनने के लिए प्रेरित करने के लिए गांधी जी के अथक प्रयासों के अतिरिक्त खादी के प्रचार–प्रसार के औपचारिक

प्रयास भी किए गए। 1921 में देशभर में राष्टीय शिक्षण के विद्यापीठ विद्यालय तथा आश्रम स्थापित हुए, जिनमें विद्यार्थियों को खादी की शिक्षा दी गई और इन विद्यार्थियों के माध्यम से खादी का संदेश देशभर में फैलाया गया।

1923 में कोकोनाडा कांग्रेस ने अखिल भारतीय खद्दर बोर्ड की स्थापना की, जिसे खादी की सारी जिम्मेदारी सौंप दी गई। 23 सितम्बर, 1925 को हुई कांग्रेस की बैठक में गांधीजी की सलाह के अनुसार अखिल भारतीय चरखा संघ की स्थापना की गई। पूरे देश में चरखे और खादी की जबर्दस्त लहर छा गई। गांधी यथासंभव लोगों के बीच में रहकर उनमें शक्ति संचार करते रहे।

एक ओर जहाँ 'चरखा के टूटे न तार, चरखता चालू रहे' लोक का वृन्दगान बन गया वहीं चरखा' विष्णु के सुदर्शन चक्र के रूप में अवतरित हो गया। सुमित्रानन्दन पन्त ने गांधी को एक ऐसे प्रतीक पुरुष के रूप में चित्रित किया जो सदियों के दुख और दीनता के अंधकार को धुनकर, प्रकाश का सूत कातकर नग्न मनुष्यता को ढक रहे थे –

सदियों का दैन्य तमिस्र तोम
धुन तुमने कात प्रकाश सूत,
हे नग्न, नग्न नरता ढंक दी।

अभूतपूर्व प्रकृति वाला यह आन्दोलन परिणामों की दृष्टि से भी अभूतपूर्व रहा। अपने उद्देश्यों में एकदम सफल रहे इस आंदोलन के बाद **भारतीयों की आय में बढ़ोतरी** हुई। अपनी पुस्तिका रचनात्मक कार्यक्रम, उसका रहस्य एवं स्थान में बढ़ी हुई आय के आकड़े देते हुए गांधी जी कहते हैं।

सन् 1940 में 13, 451 से भी अधिक गांवों में फैले हुए 275, 146 देहातियों को कताई, पिंजाई, बुनाई वगैरा मिलाकर कुल 34, 85, 609 रुपये बतौर मजदूरी के मिले थे। इनमें 19, 645 हरिजन और 57,378 मुसलमान थे, और कातने वालों में ज्यादा तादाद औरतों की थी।[30]

भारत में विदेशी मुद्रा की बचत हुई तो इसके परिणामस्वरूप ब्रिटेन को राजस्व की जबर्दस्त हानि हुई। स्वदेशी आन्दोलन के प्राथमिक दौर में ही ब्रिटिश राजस्व को पर्यापत क्षति पहुंच चुकी थी। विदेशी माल के बहिष्कार और स्वदेशी अभियान पर सजग दृष्टि रखने वाली एक अंग्रेज बुद्धिजीवी महिला ब्लान्श वैटसन ने लंदन की प्रतिष्ठित पत्रिका यूनिटी में 16 नवम्बर 1922 को छपे अपने लेख में बताया था कि इन आन्दोलनों के फलस्वरूप हिन्दुस्तान में आंतरिक राजस्व में 7 हजार करोड़ डॉलर और इंगलैंड पहुँचाने वाले राजस्व में 2 हजार करोड़ डॉलर की गिरावट मात्र एक वर्ष में ही पहुंच चुकी थी।[31]

लंकाशायर और मैनचेस्टर की कपड़ा मिलें एक–एक कर बंद होने लगीं और उससे जुड़े श्रमिक बेरोजगार हो गए। इंगलैण्ड का उद्योग जगत और श्रमिक वर्ग गांधी जी से घोर नाराज हो गया। अपने प्रति ऐसी नाराजगी और दुर्भावना लिए जब प्रथम गोलमेज सम्मेलन के लिए अक्टूबर 1931 में गांधीजी लंदन पहुंचे तो राजकीय अतिथि होने के बावजूद उन्होंने बंद मिलों के मजदूर संगठन के कार्यालय के अतिथि गृह में रुकने का फैसला किया। गांधी की सुरक्षा के प्रति चिन्तित लंदन पुलिस के लाख समझाने पर भी गांधीजी नहीं माने।

परन्तु उनके प्रवास और मजदूर परिवारों को किए सम्बोधन के बाद स्थितियां बदल गईं।

उन्होनें श्रमिकों को समझाया कि वे उनकी बेकारी और दुख से दुखी हैं, परन्तु कम से कम उनके यहाँ कोई भूखा और अधनंगा तो नहीं है, जबकि भारत में ऐसे अनगिनत लोग हैं। आंकड़ों का प्रयोग कर उन्होंने बताया कि ब्रिटेन में कुल बेरोजगार 30 लाख हैं, जबकि हिन्दुस्तान में 30 करोड़ हैं। यहाँ मजदूरों को प्रतिमास 70 शिलिंग बेरोजगारी भत्ता मिलता है, जबकि हिन्दुस्तान में प्रतिव्यक्ति औसत आय ही 7 शिलिंग 6 सेंट है। उनका प्रसिद्ध वाक्य यहीं जन्मा था कि ईश्वर में भी हिम्मत नहीं है कि वह भूखे के सामने रोटी के अलावा किसी और रूप में आए।

आधी धोती पहने स्वयं आम हिन्दुस्तानी का प्रतिनिधित्व कर रहे गांधी ने अन्त में कहा कि इस भीषण गरीबी का मुकाबला करने के लिए ही उन्होंने भारतीय जनता को चरखे का अस्त्र दिया है।[32]

बाजी पलट गई। कहां तो वे मजदूर गांधी को पेट पर लात मारने वाला मानते थे, पर अब वे उन्हें बरसों से बिछड़े भाई या पिता की भांति प्रतीत हो रहे थे। क्योंकि गांधी ने उन्हें विश्वास दिला दिया था कि भारत का आमजन ब्रिटेन के आमजन के खिलाफ नहीं है, बल्कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ है, अतः ब्रिटेन के मजदूर को इस लड़ाई में गांधी और भारतीयों के साथ होना चाहिए। श्रमिकों का हुजूम गांधी से मिलने और उन्हें गले लगाने के लिए उमड़ पड़ा।

"दी राइज एंड दी फॉल ऑफ थर्ड रीख" नामक प्रसिद्ध पुस्तक के लेखक विलियम श्रायर, जो शिकागो ट्रिब्यून के लिए उन वर्षों के लिए गांधी के साथ रहकर उनकी सभी गतिविधियों का कवर रहे थे, इस पूरे वाकये रोचक वर्णन के बाद कहते हैं कि अब पुलिस की समस्या उन्हें जन समुदाय के आक्रोश से नहीं, बल्कि प्रेम से बचाने की थी।[33]

निस्तेज ग्रामवासियों में नई ताकत का संचार करने के अतिरिक्त स्त्री, दलित तथा मुस्लिम सशक्तीकरण के नए आयाम इस आंदोलन ने स्थापित किए। आर्थिक स्वतंत्रता के साथ–साथ विभिन्न समुदायों में समानता और एकता के स्वर झंकृत करने का श्रेय भी इसी आंदोलन को है और सबसे बढ़कर इंसान की शक्तियों में प्रबलतम अहिंसा की सुप्त शक्ति को खादी ने जागृत किया और 1947 में चरखे के पहिए पर बैठकर खादी पहने हुए आजादी[34] प्रकट हो गयी।

परिणामों और प्रभावों ने सिद्ध किया कि गांधी का यह खादी सत्याग्रह अव्यावहारिक और काल्पनिक न होकर पूर्ण रूप से व्यावहारिक था। बिना किसी खून खराबे के, एक अहिंसक क्रांति द्वारा न केवल समाज के विविध वर्गों में समानता के स्वर प्रस्फुटित हुए, अपितु वर्ग–संघर्ष रहित शोषण मुक्त भारतीय समाज की नींव पड़ने का पथ भी इस आन्दोलन ने प्रशस्त किया।

वस्तुतः समय ने गांधी जी की सभी योजनाओं को प्रासंगिक सिद्ध किया। चाहे वह ग्रीन हाउस गैसों और ओजोन लेयर के क्षय होने की समस्या से जूझ रहे विश्व के लिए प्रकृति पर आधिपत्य की बजाय उसके साथ तादात्म्य और सहजीवी विकास की गांधी युक्ति हो, अथवा शक्तिशाली की उत्तरजीविता के पश्चिमी सिद्धान्त की काट के रूप में निर्बल ब्रहमास्त्र अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धान्त हों।

आज बढ़ते हुए यंत्रवाद में श्रम का स्थान घटने से मनुष्य का स्थान भी गौंण हो गया है, जिसे हम प्रौद्योगिकीय अलगांव या कहते है। इसने विक्षिप्तता, मानसिक असंतुलन आदि रोगों को जन्म दिया है। यंत्रों के प्रयोग से बचे हुए अतिरिक्त समय के दुरुपयोग की आंशका तो रहती ही है।

बड़े पैमाने पर बेरोजगारी और धन के केन्द्रीकरण के द्वारा मशीनों ने विषमता, शोषण और अन्ततः सामाजिक संघर्ष को बढ़ावा दिया है। विश्व की प्रसिद्ध क्रांतियां गवाह हैं कि अपने श्रम की चोरी और दूसरे के श्रम का शोषण ही सामाजिक संघर्ष का कारण बनता है, अतः श्रमशील समाज में वैषम्य, शोषण और सामाजिक संघर्ष की आंशका कम से कम रहती है। इसलिए आश्चर्य नहीं कि श्रम को यज्ञ का पवित्र नाम देकर गीता कहती है कि जो यज्ञ के बिना खाता है वह चोर है।[35]

आज के भारत में श्रम और खादी भाव दोनों के महत्व के तिरोहित होते जाने से न केवल कातिन और बुनकर ही बेहाल हैं, बल्कि गांधी द्वारा सुझाए गए अहिंसक समाज, रचना का एक आधार भी समाप्त हो रहा है, संभवतः इसीलिए अपने कार्यक्रम 'मन की बात'[36] में प्रधानमंत्री मोदी को आगे आकर कहना पड़ा कि खादी में करोड़ों लोगों को रोजगार देने की ताकत है, हां, सामायिक उपयोगी बदलाव और नएपन का समावेश इसमें जरूर हो।

सन्दर्भ सूची

1. ऋग्वेद, 5–47, 6
2. अन्तिम जन, दिसम्बर 2012, पृ. 34–36
3. मजीठ (मजीष्ठ) नामक लता के डंठलों और जड़ों से पक्का लाल रंग तैयार किया जाता था। साधारण कपड़ों पर छपाई गाढ़े गोंद के घोल के सहारे लकड़ी की फूल पत्तियों और चिड़ियों के रूप में, जबकि बारीक कपड़ों पर कूंची और कलम से की जाती थी।
4. आठवीं सदी के एक शिलालेख में उक्त सभा में लिए गए निर्णयों के आधार पर पादरी समाज के लिए आचार संहिता तय की गई है।
5. लैकी, हिस्ट्री ऑफ इंगलैंड इन द एटीन्थ सेन्चुरी, भाग–2, पृ. 158
6. मेहता श्री बालभाई, खादी मीमांसा, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, पृ. 255–56
7. लैकी, हिस्ट्री ऑफ इंगलैंड इन द एटीन्थ सेन्चुरी, भाग–2, पृ. 255–56
8. सुन्दरलाल, भारत में अंग्रेजी राज, भाग–2, प्रकाशन विभाग सं. प्र. मंत्रालय,
9. वहीं, पृ 65
10. कार्ल मार्क्स, दास कैपीटल, खंड–1, अध्याय 15, अंश 5
11. रजनी पामदत्त, आज का भारत, ग्रंथशिल्पी, पृ. 128
12. मो. क. गांधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, संस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, पृ. 312
13. हिंद स्वराज, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पृ. 75
14. यंग इंडिया, सितम्बर, 1921
15. वीरेन्द्र कुमार बरनवाल, सूत की कहानी (लेख) अन्तिम जन, दिसम्बर, 2012, पृ. 36–37
16. पाण्ड़ेय प्रदीप कुमार, गांधी का सामाजिक एवं आर्थिक चिन्तन, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दि. वि. वि., पृ0 65
17. हरिजन, 13.4.1940, पृ. 85
18. विद्या निवास मिश्र, चरखवा चालू रहे, हिन्दी की शब्द संपदा
19. यंग इंडिया, 2.2.1928, पृ. 34
20. विद्या निवास मिश्र, चरखवा चालू रहे, हिन्दी की शब्द संपदा में संग्रहीत निबन्ध।
21. महात्मा गांधी, ग्राम स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, पृ. 142–43
22. पाण्डे बी.एन., गांधी और मानवता का भविष्य, भूमिका, पृ. 5
23. महात्मा गांधी, ग्राम स्वराज्य, पृ. 102
24. चौ. चरणसिंह, भारत की अर्थनीति की गांधीवादी रूपरेखा, पृ. 64
25. यंग इंडिया, 17.9.25, पृ. 32
26. हरिजन, 13.10.1946, पृ. 345
27. पाण्डे बी.एन., गांधी और मानवता का भविष्य, भूमिका, पृ. 5
28. वही, भूमिका, पृ 5
29. अशोक कुमार शरण, मोहनजोदड़ो से राजघाट तक, अन्तिम जन, जनवरी–फरवरी 2012, पृ0 27

30. महात्मा गांधी, रचनात्मक कार्यक्रम : उसका रहस्य और स्थान, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पृ. 21

31. गोपाल कमल की पुस्तक, सूत की कहानी की भूमिका, अंतिम जन–दिस. 2012, पृ. 39

32. अग्रवाल पुरुषोत्तम, मजबूरी का नाम महात्मा गांधी, अन्तिम जनवरी–अप्रैल, 2012, पृ. 40

33. ध्यातव्य है जवाहर लाल नेहरू का कथन कि खादी हिन्दुस्तान की आजादी की पोशाक है।

34. भगवद्गीता 31.8.99

35. मन की बात, ऑल इंडिया रेडियो, दिनांक 31 जनवरी 2016

❑❑❑